ISSN:

भानुप्रताप शुक्ल की पत्रकारिता में भारतीय संस्कृति चित्रण की मीमांसा

***प्रो.प्रशांत कुमार**
निदेशक,
तिलक पत्रकारिता एवं जनसंचार स्कूल,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

***आदित्य देव त्यागी**
शोधार्थी,
तिलक पत्रकारिता एवं जनसंचार स्कूल,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

सारांशः

आज जब भारतीय संस्कृति की यशपताका विश्व पटल पर लहरा रही हो, समूचा विश्व भारतीय ज्ञान परंपरा की अनुपम थाती और अद्वितीय आरोग्य विधान 'योग' को अंगीकार कर चुका हो, कोविड काल में कोविड–19 वैक्सीन के वैश्विक निर्यात से महा उपनिषद समेत विविध ग्रंथों में लिपिबद्ध सनातन धर्म के मूल संस्कार तथा विचारधारा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को साकार किया गया हो, भारत की अध्यक्षता में जी–20 के माध्यम से भारतीय दर्शन विश्व को 'एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य' का मार्ग प्रशस्त करता देखा जा रहा हो, वैश्विक संकट जलवायु परिवर्तन का समाधान आज भारत की पारंपरिक जीवनशैली में देखा जा रहा हो तो ऐसे में भारतीय सनातन संस्कृति की मीमांसा अपरिहार्य हो जाती है। भारतीय पत्रकारिता जगत स्थापना काल में भारतीय संस्कृति, मूल्यों और आदर्शों को अपने लेखन में महत्वपूर्ण स्थान देता रहा। कालांतर में पत्रकारों के एक बड़े वर्ग ने असामान्य आचरण करते हुए पश्चिम की पत्रकारिता का अंधानुकरण आरंभ कर दिया। भारतीय पत्रकारिता पश्चिमी जीवन दर्शन, साहित्य और संस्कार से प्रेरणा प्राप्त करने लगी। किसी भारतीय व्यक्ति के भारत के साहित्य, दर्शन और चिंतन से जुड़ी बात को आधुनिक संदर्भ में कहने पर उस पीढ़ी के पत्रकार अविश्वास से भर उठते। धर्म, शिक्षा, संस्कार, समता, समरसता, लोक कल्याण आदि से विरक्त होकर वे केवल राजनीति में ही रुचि लेने लगे। वे भारतीय साहित्य और वांग्मय से दूर होने लगे। सुभाषितों के संदर्भ और अर्थ जाने बिना ही उनका लेखन ऐसे पत्रकारों को हास्य का पात्र बनाने लगा। ऐसे दौर में प्रख्यात पत्रकार भानुप्रताप शुक्ल ने भारतीय संदर्भ में पश्चिमी पाखंड का छौंक लगाती पत्रकारिता का न केवल डटकर मुकाबला किया अपितु भारतीय संस्कृति को प्रतिष्ठित भी किया। इसी संदर्भ में वर्तमान परिदृश्य में भानुप्रताप शुक्ल की पत्रकारिता में भारतीय संस्कृति के चित्रण की मीमांसा का प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्दः

संस्कृति, वांग्मय, सनातन, वसुधैव कुटुम्बकम्, वैश्वीकरण, एकात्मता, वैश्विक चेतना

प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति युगों से आघात सहती रही है। वर्तमान पीढ़ी साक्षी रही है कि षड्यंत्रों की अंतहीन श्रृंखला ने आस्था और विश्वास पर भी आक्रमण का कोई अवसर नहीं छोड़ा है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जी का उदाहरण हम सभी के समक्ष है। उनको काल्पनिक बताते हुए तमाम कुतर्क देते हुए तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग भूल बैठा था कि श्रीराम सामाजिक समरसता का वह सूत्र हैं जिसमें सभी पिरोये हुए हैं। संस्कार उत्सवों को बारीकी से देखने पर यह एकात्मता का सूत्र दिखाई पड़ जाता है। बच्चे का जन्म होता है तो राम के जन्म का सोहर होता है। विवाह होता है, तो राम के विवाह का गीत गया जाता है। व्यक्ति की मृत्यु होती है, तो राम नाम की सत्यता का उद्घोष किया जाता है।

एक सुनियोजित षड्यंत्र के तहत भारत की संस्कृति को दबाया जाता रहा है। राजसत्ता के उच्छिष्ट पर पलने वाले बुद्धिजीवियों ने खेमाबंद होकर भारत की लोक चेतना और आत्मिक जीवन को आहत किया है। शोध अध्ययन की प्रासंगिकता इसलिए भी बढ़ जाती है कि आज मीडिया के वैश्वीकरण ने सांस्कृतिक युद्ध का वातावरण बना दिया है। भारतीय संस्कृति की चेतना नष्ट करने में उपभोक्तावादी शक्तियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। ऐसे में राष्ट्रीय अस्मिता और संस्कृति पर हमले के दौर में चिंतन विचारणीय है। सांस्कृतिक क्षरण और जीवन मूल्यों के पतन से मीडिया में भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता अक्षुण्ण बनाए रखकर ही निपटा जा सकता है।

इतिहास साक्षी है कि पहचान छोड़कर विकास किए जाने का अर्थ अच्छा नहीं होता। यदि हमारे संस्कार गीत और रीतियां इसको सुरक्षित नहीं रखेंगे तो विकास अंधकार उत्पन्न कर देगा। अतः संस्कृति की सोच—समझ रखना आवश्यक है। जब तक समाज के उत्कर्ष और अपकर्ष का आरोह—अवरोह ज्ञात नहीं होगा, तब तक सामाजिक बुनावट का संगीत समझ नहीं आएगा। आधुनिक बनने की होड़ में जो अनुष्ठान या विचारधारा भौतिक समृद्धि को अर्जित करना ही अपना ध्येय मानने लगी हो, उसको अभौतिकता एवं आध्यात्मिकता का अमृत रसपान कराकर, मानव मंगल से जोड़ना ही भारत के लोगों का दायित्व है। सभ्य होकर असभ्य आचरण कर रहे देश के लोगों को सुसंस्कृत करके, उन्हें मानवीय संस्कृति की पवित्र धारा में स्नान कराया जाना अपरिहार्य है।

शोध उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध पत्र में भानुप्रताप शुक्ल के भारतीय संस्कृति विषयक चित्रण की मीमांसा की गयी है। शुक्ल जी की पत्रकारिता का क्षेत्र व्यापक रहा है। भारतीय जन जीवन से जुड़े लगभग सभी पक्ष उनके दृष्टिपथ में आए और पत्रकारिता का विषय बने। ऐसे में इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य भारतीय संस्कृति के संदर्भ में भानुप्रताप शुक्ल की पत्रकारिता के विविध पक्षों और भूमिकाओं का अनुशीलन करना है।

शोध प्रविधि :

शोध पत्र में ऐतिहासिक अध्ययन विधि एवं द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। इसमें मुख्य रूप से भानुप्रताप शुक्ल जी के विविध समाचार पत्रों, पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए भारतीय संस्कृति विषयक आलेखों, संपादकीयों के विश्लेषण का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही अन्य पुस्तकों, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, शोध आलेखों से भी तथ्य जुटाए गए हैं।

साहित्य समीक्षा :

सुलभ इंडिया के सितंबर 2018 के 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय विशेषांक' में प्रकाशित आलेख 'दर्शन और व्यवहार का सुलभ संगम' में लेखक पंडित सुरेश नीरव कहते हैं कि, 'संस्कृति और मनुष्य एक दूसरे के सापेक्ष हैं। मनुष्य विहीन संस्कृति और संस्कृति विहीन मानव की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह दोनों एक दूसरे के पूरक ही नहीं अन्योन्याश्रित भी हैं।'
पुस्तक 'आधुनिक भारत के निर्माता डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार' में लेखक राकेश सिन्हा डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार के हवाले से लिखते हैं कि, 'भारतीय राष्ट्र जिस सभ्यता एवं संस्कृति पर आधारित है, जिस इतिहास की नींव पर खड़ा है, वह सांस्कृतिक एवं वैश्विक चेतना को बौद्धिक रूप से अंगीकार करता है।'

श्री गुरुजी समग्र के खण्ड दो में गोलवलकर जी संस्कृति को जीवन प्रणाली बताते हुए कहते हैं कि यह युगानुयुग से चली आ रही है। यह केवल नृत्य, वाद्य, गान इत्यादि कलाओं में सन्निहित नहीं है। किसी जाति या राष्ट्र का नैतिक विकास या महत्व ही उसकी संस्कृति का द्योतक है। गोलवलकर संस्कृति को जीवनदायनी प्रेरक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित पुस्तक 'भारत की सांस्कृतिक विरासत' में लेखक डॉ. धर्मवीर महाजन ने भारत की समृद्ध संस्कृति पर विस्तार से प्रकाश डाला है। भारतीय संस्कृति को परिभाषित करते हुए महाजन लिखते हैं कि, 'संस्कृति मनुष्यों के समुदाय में रहती है, जिसे कि समाज कहा जाता है। ऐसे जिस समाज में राजनैतिक और सांस्कृतिक एकता पाई जाती है या वह समाज ऐसी एकता का इच्छुक होता है, तो उसे राष्ट्र माना जाता है।'

सीपीआई प्रकाशन से प्रकाशित 'विवेकानंद का संदेश' पुस्तक में लेखक ए. वी. वर्धन भारतीय संस्कृति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि, 'भारतीय संस्कृति में बुराई की ओर नहीं, बल्कि भलाई की ओर देखा जाता है। इस संस्कृति का लक्ष्य है अंधकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर, मृत्यु से अमृतत्व की ओर बढ़ना और तब तक बढ़ते ही चले जाएं जब तक अमृतत्व की प्राप्ति न हो जाए।'

मीमांसा :

जिस देश की भूमि पर वहाँ का राष्ट्र बनता है, उस देश की ही प्रकृति और प्रवृत्ति राष्ट्र की भी प्रकृति और प्रवृत्ति हो जाती है। राष्ट्र का जन्म देशमाता के गर्भ से होता है, इसलिए देश ही राष्ट्र का स्वभाव सुनिश्चित करता है। देश की प्राकृतिक संरचना ही राष्ट्र की भौतिक–अभौतिक समृद्धि, सभ्यता के विकास की दिशा और स्वरूप का निर्धारण करती है। राष्ट्र देशमाता के प्रति वहाँ के समाज की भावनात्मक एकात्मकता की भौतिक अभिव्यक्ति है। भावनाओं की इस भौतिक सृष्टि की रक्षा और उसको सतत विकासमान रखने के लिए ही विभिन्न विधि– विधानों और व्यवस्थाओं का निर्माण किया जाता है। ऐसी व्यवस्थाएं और विधि–विधान जब तक देशमाता की प्रवृत्ति, प्रकृति और विधि–निषेधों के साथ जुड़े रहते हैं, राष्ट्र की प्रगति और गति अप्रभावित रहती है।
भानुप्रताप शुक्ल इस विचार से सहमत होते हुए कहते हैं कि स्वनिर्मित व्यवस्थाओं तथा विधि–विधान का अनुपालन करने वाला राष्ट्र न तो कभी थकता है और न कभी उसकी प्रगति रुकती है। उसमें सनातन, पुरातन और अधुनातन के बीच किसी दुराव, भेद या संघर्ष का निर्माण नहीं होता है। देश के अतीत, आधुनिक और आगत को जो सूत्र एकात्म रखता है, जो उसकी कार्यशैली, जीवनशैली एवं जीवन के उद्देश्यों का निर्धारण करता है और उनके बीच सतत तालमेल बनाकर रखने वाली अनुभूति को ही संस्कृति के नाम से जाना जाता है और वही संस्कृति उस देश को राष्ट्र बनाती है। शुक्ल संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि, **'संस्कृति कोई ओढ़ने–बिछाने की चीज नहीं, आत्माभिव्यक्ति का ज्ञान तत्व है।'**

लोकचित्त की अभिव्यक्ति और अस्मिता स्मृतियों पर निर्भर होती है। स्मृतियां समय के अंधकार में सन्मार्ग प्रदर्शित करती हैं। अनेक को सम्बद्ध करके शक्ति प्रदान करती हैं। इतिहास का प्रवाह कोई सहसा उत्पन्न हुआ तत्व नहीं होता। स्मृतियां ही इतिहास प्रवाह को अनवरत रचती हैं। लोक चित्त और इतिहास प्रवाह दोनों ही स्मृतियों से संचालित और प्रेरित होते हैं। भारत की हजारों वर्षों की अंतहीन यात्रा में कई विराम, कई मोड़, कई उतार–चढ़ाव आए, जय–पराजय के कई अवसर उपस्थित हुए। परतंत्रता और ध्वंस के अनेक चिह्न लिए, विपदाओं और विपन्नताओं के असंख्य अनुभव समेटे भारत विश्व का एकमेव सहिष्णु और मत निरपेक्ष राष्ट्र के रूप में खड़ा है।

भानुप्रताप शुक्ल भारत की इस गौरव यात्रा को स्वर देते हुए कहते हैं कि व्यक्ति, राष्ट्र, संस्कृति और इतिहास के पारस्परिक संबंधों का सर्वप्रथम प्रतिपादन भारत ने ही किया था। वेदों, उपनिषदों और पुराणों की रचना करके भारत ने ही सर्वप्रथम इतिहास लेखन विधा का सूत्रपात किया। भारत अपनी संस्कृति और जीवन दृष्टि के साथ ही, अन्य राष्ट्रों की संस्कृति की रक्षा करने में समर्थ है। वह काल की कृपा से नहीं, बल्कि काल से लड़कर कालजयी बना है। उदारता, करुणा, क्षमा, समादरता, सह–अस्तित्व, स्वयं जीना और दूसरों के जीवन को निरापद रखना भारत की प्राणधारा सनातन का मूल तत्व है। शुक्ल अनुपम, अद्वितीय भारत राष्ट्र की विराट और महान सांकृतिक परंपरा को वर्णित करते हुए कहते हैं कि, **'सृष्टि के साथ जन्मे भारत के अज्ञात आदि का केवल अंशतः ज्ञात पक्ष ही इतना महान और गौरवशाली है कि समस्त संसार उसके सामने बौना सा लगता है। बौना है भी। भारत विश्व–सभ्यता का सुमेरु है। सभ्यता का इतिहास भारत का श्लोक पढ़े बिना आरंभ नहीं होता।'**

वसुधैव कुटुम्बकम् की संकल्पना

यदि विश्व केवल 'आप' होता तो उस कसौटी पर देश और समाज का सुख–दुख परखा जा सकता था। केवल अपने सुख–दुख को ही दुनिया का सुख–दुख मानने की मानसिकता और प्रवृति व्यक्ति को स्वार्थी और क्रूर बनाती है। उसे उसकी मानवीय प्रज्ञा से दूर ले जाती है, यह पशुवृति उसमें विकृति उत्पन्न करती है। इस प्रवृत्ति में संस्कृति का आधार नहीं होता है। शुक्ल की दृष्टि में संस्कृति में सुख बांटने से बढ़ता है, दुख बांटने से घटता है। छीन कर खाने और बांटकर खाने का परिणाम भूख की समाप्ति के रूप में समान हो सकता है, किंतु लोक जीवन के सुख और संतुलन के संदर्भ में यह दुखकारक होता है। वे स्मरण कराते हैं कि जब हमारे ऋषियों, संतों और महाप्रज्ञ पुरुषों ने अंतिम व्यक्ति के सुख–दुख के पैमाने से लोक जीवन का सुख–दुख नापने की बात की और राष्ट्र तथा लोक

के विकास को अंत्योदय के साथ जोड़ा तो इस सृष्टि और दर्शन में व्यक्ति को स्वार्थी बनने का हेतु नहीं था। इसका उद्देश्य यह था और है कि व्यक्ति केवल अपने पेट में न समाकर अपने आसपास रहने वालों के पेट की भी चिंता करे।

अगस्त 1992 के दौरान अमेरिकी बुद्धिजीवियों द्वारा गढ़ा गयी 'ग्लोबल विलेज' की संकल्पना की पार्श्वभूमि एवं मानसिकता निर्विवादित रूप से भारतीय संस्कृति के 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से अभिप्रेरित रही है। कई युग पूर्व 'हम भारत के लोगों', यहां के सनातन हिंदू और वैदिक दर्शन ने वसुधैव कुटुम्बकम् की घोषणा ही नहीं की, बल्कि कुटुम्ब का निर्माण करके सबका समान रूप से भरण—पोषण भी किया। भानुप्रताप शुक्ल इस सारस्वत सत्य को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि, **'हमारे लिए संपूर्ण विश्व अर्थात संपूर्ण वसुधा एक कुटुम्ब थी अतएव हमने सभी का समान रूप से भरण पोषण किया। सभी को श्रेष्ठ बनाने की संस्कार विधि का निर्माण किया। हमारे इस सभी में केवल मनुष्य ही नहीं संपूर्ण जड़, चेतन अर्थात लोक सम्मिलित था।'**

भानुप्रताप शुक्ल की दृष्टि में हमारी विराट संस्कृति का नाद समस्त दिशाओं में विस्तार लेता हुआ अनंत में विलीन हो जाता है। अहमन्यता रहित समाज का निर्विशेष व्यक्ति एवं समुदाय का विस्तार ही भारतीय संस्कृति है। वे उदाहरण से स्पष्ट करते हैं कि होली के उत्सव में सारा समाज एक रंग हो जाता है। जिसमें सारे विभेद मिट जाते हैं, सभी विशेषण लुप्त हो जाते हैं, सभी निर्विशेष हो जाते हैं। इस पर्व पर एक रंग, एक रस होने की संकल्पना का एकमात्र उद्देश्य अंततोगत्वा सभी जन का एकात्म होना है। उल्लास का यह उत्सव 'शूद्र पर्व' माना जाता है जिससे कि सारा समाज अपने जन्मना शूद्र रूप में सराबोर हो सके। शुक्ल कहते हैं कि हमारी संस्कृति अभेद धर्मा है। जीवन के अंतिम संस्कार कर्म की भूमि शमशान को निर्विशेष होने के कारण ही पवित्र माना गया है। वे भारतीय लोकव्यवस्था पर संशय जताते लोगों को सुझाव देते हैं कि काशी में डोमराजा की सर्वमान्य सत्ता को स्वीकारे जाते देख उनका संशय तिरोहित हो जाएगा। डोम राजा हमारी लोक स्मृतियों में उपेक्षित, वंचित या तथाकथित दलित नहीं बल्कि महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। शुक्ल के अनुसार, **'डोम राजा केवल व्यक्ति के अंतिम सत्य मृत्यु के ही नहीं, लौकिक समानता के भी साक्षी हैं। मणिकर्णिका घाट पर जाकर सभी का जातिविहीन, निर्विशेष हो जाना एक अनुभूत और स्वयं सिद्ध सत्य है।'**

सनातन गणराज्य व्यवस्था

भारतीय राजनीति में दल और सरकार को लेकर बहस चलती रहती है कि सरकार के कार्यों में दल का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, सरकार के अलावा या सरकार से अलग कोई दूसरा शक्ति केंद्र नहीं होना चाहिए। वास्तव में भारतीय लोकतंत्र और शासन तंत्र के मध्य यह बड़ी दुविधा रही है। देश की आजादी के पूर्व जब कांग्रेस शासन में थी तो यह समस्या नहीं थी। दल और सरकार का नेता अलग–अलग होता था। आजादी के प्रथम चरण पचास के दशक तक यह व्यवस्था बनी रही। उसके बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू ने सरकार पर दल की निगरानी की व्यवस्था को अपने अधिकारों और कार्यों में हस्तक्षेप मान लिया। पुरुषोत्तम दास टंडन को हटाकर नेहरू जी कांग्रेस अध्यक्ष तथा प्रधानमंत्री दोनों पदों पर आसीन हो गए। इसी परिवर्तन ने भारत की शासकीय राजनीति में ब्रिटिश और अमेरिकी राजनीतिक चरित्र का सूत्रपात किया। शुक्ल कहते हैं कि कालांतर में दामोदरम संजीवैय्या, संजीव रेड्डी, कामराज आदि को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया तो गया लेकिन ऐसे लोगों का कोई राजनीतिक आधार या ऐसी राष्ट्रीय छवि नहीं होती थी कि वे नेहरू जी को निर्देश दे सकते हों। नीतियां नेहरू जी बनाते थे, स्वीकृति कांग्रेस दल से प्राप्त करते थे। घोषणाएं पहले होने लगीं, प्रस्ताव बाद में पारित किए जाने लगे।

शुक्ल के अनुसार भारत की पांच हजार वर्ष से भी अधिक समय की ज्ञात राजनीतिक परंपरा और गणतंत्र व्यवस्था में इस प्रकार के विचार अथवा विसंगति अभूतपूर्व थी। वे इस विचार के लिए भारत की दलीय और संसदीय लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को अमेरिका और ब्रिटिश संदर्भ के आलोक में देखे जाने को उत्तरदायी मानते हैं। उनका अटूट विश्वास था यदि दल और सत्ता के पारस्परिक संबंधों को भारतीय लोक मनीषा के प्रकाश में देखा जाता तो कोई समस्या उत्पन्न हो ही नहीं सकती थी। वे भारत की हजारों वर्ष पुरातन गणराज्य परंपरा का स्मरण कराते हैं कि भारतीय परंपरा में स्वराज्य को सुराज बनाए जाने की एक सर्वसम्मत व्यवस्था थी जो राजा या राजप्रमुख को निरंकुशता से बचाए रखकर उसको प्रजापालक बनाती थी। वह जब भी अपने दायित्व बोध से विमुख होता था सभा और आचार्य उसे पदच्युत कर देते थे। शुक्ल सनातन व्यवस्था की सगर्व उद्घोषणा करते हुए कहते हैं कि, **'अथर्ववेद में वर्णित स्वराज्यं, वैराज्यं, गणराज्यं, अधिराज्यं आदि दर्जनों प्रकार की शासन व्यवस्थाओं में शासन प्रमुख अर्थात राजा या और कोई शासन का सर्वेसर्वा कभी नहीं रहा। नीति निर्धारण कोई सभा, समिति या आचार्य करता था। राजा या राज्यप्रमुख केवल उसका क्रियान्वयन करता था। क्रियान्वयन के स्तर पर वह कोई भूल–चूक या मनमानी करता था तो उसे सभा, समिति या आचार्य के सामने प्रस्तुत होकर स्पष्टीकरण देना पड़ता था। आचार्य और समिति या सभा की इस निगरानी को राजकाज में हस्तक्षेप नहीं, आवश्यक माना जाता था।'**

आधुनिकता बनाम अरण्य संस्कृति

आधुनिक होने अर्थात आधुनिकता की भारत के बुद्धिजीवियों की अवधारणा एकदम विकृत हो चली है। सोच और आचरण के स्तर पर हम जिस आधुनिकता का प्रतिपादन और प्रतिनिधित्व करते हैं, वह आधुनिक होने से नहीं, कोई पहनावा अपनाने, कोई विशेष पेय पीने, किसी विशिष्ट प्रकार का केश–विन्यास करने से जुड़ा होता है। शुक्ल इसका प्रतिकार करते हुए आधुनिक होने का अर्थ मौजूदा परिस्थिति का वर्तमान समय में सम्यक् समाधान करने की सोच से ग्रहण करते हैं। वे कहते हैं कि योगेश्वर श्रीकृष्ण एवं भारत के ऋषियों ने इसी को प्रज्ञा कहा है और इस प्रकार का चिंतन और आचरण करने वालों को प्रज्ञावान। प्रज्ञावान होने के लिए भौतिक साधन संपन्नता आवश्यक नहीं है। शुक्ल स्पष्ट करते हैं कि अपने परिवेश, प्रवृत्ति और परंपरा को संस्कृति में ढालकर जीना और अपने अनुभव से अपनी परंपरा और संस्कृति को समृद्ध करना ही आधुनिकता है। किसी की नकल करना या विकारों को विकास मानकर उन्हें स्वीकार कर लेना, किसी भी दृष्टि से आधुनिकता नहीं है। आज दुर्भाग्य से विकृतियों का परिष्कार करके उन्हें संस्कृति बनाने की प्रक्रिया को आधुनिकता माना जा रहा है।

शुक्ल पश्चिमी देशों के साथ भारत की तुलना को अनुचित मानते हैं। उनका मत है कि भारत में संप्रदाय तो विद्यमान है, लेकिन समाज की अवधारणा का कोई स्थान नहीं है। यहां समाज का स्थान लोक जीवन ने ले लिया है, जिसमें व्यक्ति का केवल व्यक्ति से नहीं बल्कि प्रकृति, संपूर्ण जड़–चेतन से उसका संबंध परिभाषित भी है और निर्धारित भी है। वे भारतीय परंपरा से प्रेरित होने आवाहन करते हैं कि अनादि और अनंत जीवन परंपरा की ओर देखने से हमें यह बोध होता है इसमें संबोधनों, संबंधों और संवेदनाओं के प्रति इतने शब्द और आचरण के इतने आयाम, अवसर तथा स्तर मौजूद हैं कि उनकी गिनती कर पाना कठिन ही नहीं असंभव भी है। भारत का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति के साथ इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि उसे अलगाव का एहसास ही नहीं होता। गांव से लेकर गोत्र तक की लंबी परंपरा सबको एक कर देती है। कभी पूर्वजों के स्तर पर, तो कभी ऋषियों के स्तर पर, कभी समुदाय के स्तर पर तो कभी शास्त्र के स्तर पर, कार्य के स्तर पर तो कभी कर्मकांड के स्तर पर जनमानस एकात्म हो जाता है।

रावण का उदाहरण देते हुए शुक्ल बताते हैं कि एक धूर्त आक्रांता के रूप में उसे हमारी सामाजिक एकता का ज्ञान था। उसे पता था कि हमारे समाज जीवन केंद्र का स्पंदन ऋषि–मुनियों के वन्य

आश्रमों में है। ऐसे में उसने उन्हीं वन्य कुटियों तथा वहां होने वाले यज्ञों को ही अपने आक्रमण का लक्ष्य बनाया था। शुक्ल भारत की अति प्राचीन अरण्य संस्कृति के सर्जक और वाहक 'वनवासियों' को आदिवासी कहे जाने से खासे निराश होते हैं। उनको लगता है कि ऐसा कहकर हम अपनी संपूर्ण वैदिक, उपनिषदीय और आचार्य कुल परंपरा को नकार देते हैं। वे देवदुर्लभ क्षेत्रों से जुड़े इन निवासियों की महान परंपरा को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि, **'जिन क्षेत्रों में हमारे ऋषियों ने ब्रह्मचिंतन और साक्षात्कार किया, जहां मंत्रों और श्लोकों की रचना की गई, जहां सृष्टि के सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन किया गया, जिनके संरक्षण में विश्व, ब्रह्मांड, व्यक्ति और प्रकृति के बीच नाते–रिश्ते निर्धारित होते और किए जाते थे, उसे क्षेत्र को असभ्य और आदिवासी इलाका मानकर हम सभ्य होने का दावा करते हैं।'**

वैचारिक बिचौलियों का भ्रांतिवाद

भानुप्रताप शुक्ल भारत में वैचारिक शून्य के लंबे कालखंड के लिए ऐसे वैचारिक बिचौलियों को दोषी ठहराते हैं जिन्होंने एक आम नागरिक को राष्ट्र विचार के मार्ग से भटकाने तथा भ्रमित करने का काम निरंतर किया। वे मानते हैं कि यह तो भारत का भाग्य ही था जिसके चलते ऐसे बिचौलियों के अथक प्रयासों के बाद भी यहां की सांस्कृतिक धारा अवरुद्ध तो हुई लेकिन जीवित बनी रही। शुक्ल के अनुसार ऐसे वैचारिक बिचौलिये ही राम जन्मभूमि, हिंदू, हिंदुत्व और राष्ट्र को लेकर भ्रांतियों का निर्माण करते रहे हैं। भारतीय संस्कृति से जुड़े इन चारों प्रभावी पक्षों की कुतर्कपूर्ण परिभाषाएं गढ़कर जनमानस को दिग्भ्रमित किए जाने का प्रयास होता रहा है। ऐसे विचारकों की ही करामात है जो राष्ट्रीय समस्याओं को खंड–खंड में विभक्त करके देखा जाता है। ऐसे संपादकीय लेख और टिप्पणियां हिंदी–अंग्रेजी समाचार पत्रों में बड़े पैमाने पर देखे जा सकते हैं जिनमें कश्मीर, पंजाब, असम, आंध्र, तमिलनाडु और देश के दूसरे भागों के लोगों को अलग–अलग करके देखा जाता है। उनकी समस्याओं पर खंड–खंड में विचार किया जाता है। दुर्भाग्य यह है कि उन समस्याओं का समाधान भी विभाजित बुद्धि से ही खोजा जाता है।

शुक्ल के अनुसार यह वैचारिक विभाजन इन बुद्धिजीवियों के असली चेहरे जनमानस के सामने लाने के लिए पर्याप्त है। उनका विचार है कि ऐसे भ्रांतिवाद का मिथक गढ़ कर ही ये बिचौलिए अपनी आजीविका के साधन जुटाते रहे हैं। इतिहास साक्षी है ऐसे स्वयंभू विचारक अपने व्यक्तिगत स्वार्थों तक ही सीमित रहे हैं। उनका मत है, **"भारत में वैचारिक बिचौलियों की कभी कमी नहीं रही। राजनीति से लेकर समाज, संस्कृति और धर्म तक में इन अपभ्रंशवादी विचारकों ने समूचे राष्ट्रीय**

वातावरण को प्रदूषित किया। यही कारण है कि विशाल राष्ट्रीय इतिहास खंड के दौरान विभिन्न समयों पर शून्यता पैदा होती रही।"

निष्कर्ष :

यदि भारतीय जन आत्मग्लानि बोध से उभर पाते तो निश्चित ही उनको अपनी महान संस्कृति और सभ्यता पर गौरव की सुखद अनुभूति हुई होती। वर्तमान में राष्ट्र, राष्ट्रीयता, संस्कृति, जीवन मूल्य, भावना और भूगोल की गौरवशाली परंपरा आधारित भारतीय संस्कृति के पराभव के लिए राजनीति और मीडिया व्यापक दोषी हैं। साहित्य और संस्कृति से कटकर भारतीय मीडिया अपने दायित्व बोध से भटक गया। समाज में आयातित संस्कृति की सोच ने अलग राज्य, अलग मजहबी अस्मिता, अलग भाषा के अभियान तथा अभिमान को जन्म दिया है। संस्कृति को संप्रदाय का पर्याय मान लिया गया है। भारत की विकास यात्रा में बाधक तत्वों का उत्पन्न होना उसकी सहज और स्वाभाविक सनातन, सामाजिक गतिशीलता है और गति में जब–जब रोड़े आते हैं तब–तब हिंदू संस्कृति की महागंगा राह के पत्थरों को अपनी संस्कृति के निर्मल जल से या तो उन्हें तराशती रही है या उन्हें रेशे–रेशे कर आत्मसात करती रही है।

भानुप्रताप शुक्ल जी की पत्रकारिता इस वैचारिक विमर्श को स्थापित करने में सफलता प्राप्त करती है कि कलुष और पशुत्व जैसे मनोविकारों से स्वयं को दूर ले जाने के निमित्त प्रयास हमें संस्कारवान बनाते हैं। यह चेतना ही हमारी संस्कृति है। व्यक्तित्व के निर्माण में जो कुछ भी सहायक है, वही संस्कृति है। समाज की जीवन विधि के रूप में संस्कृति लोगों के विचार तथा व्यवहार का प्रतिमान है। ऐसे में मीडिया में उसकी यशोगाथा का अनवरत गान ही भावी पीढ़ियों को गौरवान्वित होने के अवसर प्रदान करने में समर्थ एवं सक्षम होगा। मीडिया में संस्कृति विशिष्ट से जुड़े प्रसंगों का चित्रण आत्मीय गौरव जगाता है। ऐसे में भारतीय मीडिया को अपने संस्कृति विषयक दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है। प्रचलित मानकों को फिर से परिभाषित करते हुए ऐसी व्यवस्था तैयार किया जाना चाहिए जिससे मीडिया संस्कृति से ही देश, समाज, परिवेश के साथ ही व्यक्तिगत संस्कृति का परिचय भी आसानी से मिल सकता हो।

संदर्भ सूची :–

1. शुक्ल, भानुप्रताप (2008), भानुप्रताप शुक्ल समग्र, खण्ड–2, दिल्ली : साहित्य प्रकाशन, मयूर विहार, पृष्ठ–233

2. शुक्ल, भानुप्रताप (1994, 15 दिसंबर), इतिहास के कदम, दिल्ली : पंजाब केसरी

3. शुक्ल, भानुप्रताप (1994, 6 फरवरी), ग्लोबल विलेज, दिल्ली : पांचजन्य

4. शुक्ल, भानुप्रताप (1994, 25 अप्रैल), संस्कृति का लोक–स्वरूप, दिल्ली : दैनिक जागरण

5. शुक्ल, भानुप्रताप (1995, 25 अप्रैल), विडंबना, दिल्ली : पंजाब केसरी

6. शुक्ल, भानुप्रताप (1995, 13 जुलाई), आरक्षण क्यों, दिल्ली : पंजाब केसरी

7. शुक्ल, भानुप्रताप (2008), भानुप्रताप शुक्ल समग्र, खण्ड–2, दिल्ली : साहित्य प्रकाशन, मयूर विहार, पृष्ठ 227

पुस्तकें पत्रिकाएं :

1. सुलभ ग्राम, आई.एस.एस.एन. 22307575, महावीर इंक्लेव, पालम–डाबड़ी मार्ग, नई दिल्ली, 110045
2. सिन्हा, राकेश, (2016), आधुनिक भारत के निर्माता डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
3. श्री गुरुजी समग्र, खण्ड–2, सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज पथ, देशबंधु गुप्ता रोड़, झंडेवालान, नई दिल्ली, 110055